अश्वघोष का बौद्ध दर्शन में योगदान

Dr. Kunwar Lal Meena

Associate Professor, Sanskrit
Govt. PG College Karauli

महाकवि अश्वघोषः– महान बौद्ध दार्शनिक, महाकवि आचार्य अश्वघोष सम्राट कनिष्क के समकालिक थे। वे न केवल बौद्ध दर्शन के इतिहास में ही, अपितु संस्कृत काव्यों की समस्त परम्परा में भी अत्युच्च गौरवमय स्थान रखते हैं। महाकवि अश्वघोष आदिकवि वाल्मीकि के एक महत्वपूर्ण उत्तराधिकारी थे एवं कालिदास तथा भास के पूर्वगामी थे। बहुत से भारतीय तथा पाश्चात्य विदान् विश्वासपूर्वक यह मानते हैं कि महाकवि कालिदास अनेक विषयों में हमारे इन आचार्य के अतिशय ऋणी थे। महाकवि अश्वघोष का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही था कि उन ने अपने सभी काव्यों के माध्यम से बुद्धभक्ति का ही सर्वाधिक प्रचार प्रसार किया । यद्यपि महायानमत की शिक्षाएँ अश्वघोष के समय से प्रायः दो या तीन शताब्दी पूर्व ही प्रचार में आ रही थी, परन्तु उन शिक्षाओं की प्रभावमयी अभिव्यक्ति सर्वप्रथम अश्वघोष की कृतियों (रचनाओं) में ही दिखायी दी।

अश्वघोष की रचनाएँः– अश्वघोष बौद्ध भिक्षु और महान् पण्डित थे, किन्तु वे अपने समय की काव्यशैली के प्रभाव से वंचित न रह सके। उनके द्वारा रचित दोनों ही काव्य –**सौन्दनन्द** एवं **बुद्धचरित,** शास्त्रीय शैली (वैदर्भी रीति) के महत्वपूर्ण प्रबन्धकाव्य हैं। उनकी शैली भी कालिदास के समान परिष्कृत एवं रसान्वित होने के साथ नैसर्गिक ओजस्विता एवं सौंदर्य से परिपूर्ण है। [1]

बौद्ध महाकवि अश्वघोष महान् धर्मप्रचारक, दार्शनिक तथा उच्चकोटि के विद्वान भी थे।

इनकी रचनाओं के अन्त में यह वाक्य मिलता है–

आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियम्। (सं.साहि.का इतिहास पृ.सं.226)

इससे यह स्पष्ट होता है कि इनकी माता का नाम **''सुवर्णाक्षी''** था। ये साकेत के निवासी थे। ये बौद्ध भिक्षु तथा आचार्य थे जिन्हें **भदन्त, महाकवि और महावादी** (महान शास्त्रार्थी) भी कहा जाता था। यद्यपि अश्वघोष का सम्बन्ध संस्कृत की पुरातन परम्परा से हटकर क्रान्तिकारी बौद्धधर्म के साथ था, तथापि संस्कृत–कवियों के समान इन्होनें अपने को आत्म–प्रकाशन से दूर रखा है। इसीलिए इनके विषय में उक्त अन्तः साक्ष्य के अतिरिक्त कोई अन्य स्पष्ट प्रमाण नही है। ब्राह्म साक्ष्यों में संस्कृत भाषा में प्राप्त सामग्री नगण्य है, अतएव इनके विषय में अधिकांशतः चीनी और तिब्बती साहित्य से ही तथ्य प्राप्त होते है। बौद्ध साहित्य में इनका नाम भक्ति और श्रद्धा से लिया गया है।

अश्वघोष मूल रूप से साकेत के निवासी थे किन्तु सम्राट कनिष्क के सम्पर्क के कारण ये पुरूषपुर (पेशावर) में रहने लगे थे। इनकी माता का नाम मिलता है, पिता का नहीं। इस पर विमल चरण लाहा ने अनुमान लगाया है कि उस समय ब्राह्मण तथा क्षत्रिय परिवारों में मातृसत्ता का प्रचलन था। किन्तु वस्तुतः अश्वघोष माता के प्रति स्नेहातिशय के कारण **''सुवर्णाक्षीपुत्र''** कहलाना पसन्द करते थे। अश्वघोष को सभी विद्वानों ने मूलतः ब्राह्मण माना है। डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य का मत है कि बौद्ध भिक्षु बनने से पूर्व ये शैव मतानुयायी थे। यज्ञभूमि का निर्माण, यज्ञ में मन्त्रपाठपूर्वक आहुति देना इत्यादि विषयों का सूक्ष्म वर्णन इन्होंने किया है। आरम्य में ब्राह्मण–धर्म से सम्बद्ध विभिन्न ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन इन्होंने किया था, बौद्ध–धर्म में दीक्षित होने पर उससे सम्बद्व ग्रन्थों का भी पारायण किया एवं धर्म–प्रचारक बने।

अश्वघोष को बौद्धधर्म में दीक्षित करने वाले बौद्ध आचार्य के विषय में कुछ मतभेद है। डॉ. लाहा ने कहा है कि स्थविर पार्श्व अथवा उनके शिष्य पुण्ययश ने अश्वघोष को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। अनुमान यह होता है कि तीनों समकालिक थें। पार्श्व बहुत वृद्ध थे, अतएव अश्वघोष को उनकी सेवा का अधिक अवसर नही मिला। उनके शिष्य पुण्ययश को ही वे अपना गुरू मानने लगे होंगे। अश्वघोष के ग्रन्थों में अनुमान किया गया है कि वे युवावस्था में विलासपूर्ण जीवन–यापन करते होंगे। इसीलिए नन्द के विषय में उन्होंने कहा है कि जो पहले कामासक्त था, वही अब मुक्ति की चर्चा करता है। इस दृष्टि से अश्वघोष के दीक्षा–गुरू का महत्व है कि उन्होंने एक विद्वान के विलासपूर्ण जीवन को वैराग्य में परिणत कर दिया।

अश्वघोष के धर्म को लेकर भी विवाद है। कुछ विद्वान् उन्हें हीनयानी और कुछ महायानी सिद्ध करते है। उनकी रचनाओं में दोनों सम्प्रदायों के लक्षण मिलते हैं, यही इस विवाद का कारण है।

वैशाली की द्वितीय संगति में बौद्धधर्म स्थविरवाद और महासांधिक नायक दो निकायों में विभक्त हो गया था।

स्थविरवाद (हीनयान) सम्प्रदाय के लोग बुद्ध के मानवीय स्वरूप के रक्षक थे वे बुद्ध की प्रतिमा नहीं पूजते थे। अशोक के समय भी बौद्धो में मूर्तिपूजा नही थी, ईस्वी सन् के कुछ पूर्व बौद्धों में करूणामय देवताओं की पूजा आरम्भ हुई। [2]

महाकवि अश्वघोष संस्कृत के बौद्ध कवि है। बौद्ध ग्रन्थों ने इनके विषय में आवश्यक जानकारी को सुरक्षित रखा है। इनके नाम के सम्बन्ध में ऐसी कथा प्रचलित है कि इनका कण्ठ स्वर इतना मनोहर, मधुर और गम्भीर था कि इनके व्याख्यान को सुनकर घोड़े भी (अश्व) अपना हिनहिनाना (घोष) बन्द कर देते थे। इसी से इनका नाम 'अश्वघोष' पड़ा। ये **'आर्य','भदन्त', 'महापण्डित', 'महावादिन्' तथा 'महाराज',** आदि विरूदों (यथ सूचक नामों) से अलंकृत थे। चीनी परम्परा के अनुसार अश्वघोष बौद्धों की चतुर्थ संगीति था महासभा में विद्यमान थे। यह सभा काश्मीर के कुण्डल वन में कनिष्क द्वारा बुलाई गयी थी। [3]

भगवान बुद्ध ने संदर्भ का उपदेश जनभाषा में दिया था जो मध्यमण्डल में बोली जाती थीं यह भाषा मागधी थी, जो कालान्तर में ''पालि'' नाम से अभिहित की गयी। बुद्धवचन इसी पालि भाषा में सुरक्षित है। ईसा की प्रथम शताब्दी में बुद्धवचन जिसे भिक्षु महेन्द्र सम्राट अशोक के समय में लंका ले गये थे, पूर्णतः लेखबद्ध **''त्रिपिटक'' (पालि–त्रिपिटक)** कहा जाता है। सम्पूर्ण त्रिपिटक पालि भाषा में उपलब्ध है। संस्कृत भाषा में भी बौद्धों ने त्रिपिटक की रचना की थी। **ये तीन पिटक है 1. सूत्रपिटक (सुत्तपिटक), 2. विनयपिटक और 3. अभिधर्मपिटक (अभिधम्मपिटक)**। ये ग्रन्थसमूह ही प्रारम्भिक बुद्ध धर्म ओर दर्शन के जानने के लिए मूलस्त्रोत है। [4]

कालान्तर में महात्मा बुद्ध के अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई और वे कई सम्प्रदायों में विभक्त हो गए। धार्मिक मतभेद के कारण बौद्धधर्म की दो प्रधान शाखाएँ कायम हुई जो हीनयान और महायान के नाम से प्रसिद्ध है। हीनयान का प्रचार भारत के दक्षिण में हुआ। आजकल इसका अधिक प्रचार लंका, ब्रह्या तथा स्याम में है। पालि–त्रिपिटक ही हीनयान के प्रधान ग्रन्थ हैं। महायान का प्रचार अधिकतर उत्तर के देशों में हुआ। इसके अनुयायी तिब्बत,चीन तथा जापान में अधिक पाए जाते है। महायान का दार्शनिक विवेचन संस्कृत में हुआ है। अतः इसके ग्रन्थों की भाषा संस्कृत है। महात्मा बुद्ध की शिक्षा का सारांश उनके चार आर्यसत्यों में निहित है। इन्हीं आर्यसत्यों का उपदेश बुद्ध ने जनसाधारण को दिया है।

चार आर्यसत्य ये हैः– 1. सांसारिक जीवन दुखों से परिपूर्ण है। 2. दुखों का कारण है। 3. दुखों का अन्त सम्भव है। 4. दुखों के अन्त का उपाय है।

इन्हे क्रमशः दुख, दुःखसमुदाय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोध मार्ग कहते है। गौतम बुद्ध के अन्य सभी उपदेश इन्हीं आर्यसत्यों से सम्बद्ध हैं। [5]

दुःख निरोध के लिये भगवान् जिस मार्ग का अनुसरण करने हेतु उपदेश करते थे, उस **मार्ग के आठ अंग ये है– 1. सम्यक् दृष्टि, 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् वाक, 4. सम्यक् कर्मान्त, 5. सम्यक् आजीव, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक् स्मृति, एवं 8. सम्यक् समाधि।** यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही, बौद्धमतानुसार, विशुद्व ज्ञान ही प्राप्ति का तथा जरा मरण से मुक्ति का एकमात्र साधन (उपाय) है, अन्य कोई नहीं।

भगवान् बुद्ध के समस्त धर्म एवं विनय का एकमात्र लक्ष्य निर्वाण ही है। दुःखों से मुक्ति पाना एवं ज्ञान की प्राप्ति ही निर्वाण का दूसरा नाम है। यह संसार मृगतृष्णा के तुल्य है। इस मृगतृष्णा को प्रज्ञा एवं समाधि के माध्यम से विनष्ट किया जा सकता है। भगवान् ने इस निर्माण मार्ग का अन्वेषण (अनुसंधान) कर जगत् का मार्गदर्शन किया।

बुद्धचरित में ''निर्वाण'' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है जिस अर्थ में त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थों में प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध मत में परम सुख का नाम ही ''निर्वाण'' है। महाकवि भी कहते है–

f

नर्वाणं परमं सुखम्।। (बु.च.पृ.210)

दूसरे शब्दों में 'निर्वाण' शान्त, सुखमय एवं प्रणीत है। बुद्ध के उपदेशानुसार कोई भी साधक अष्टांगिकमार्क का आलम्बन कर संसार के सभी संस्कारों को प्रज्ञा से देखता हुआ निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।

यह विध्नरहित होने से, निरूपद्रव होने से, निर्भय होने से, शान्त होने से, कुशल होने से, प्रसादयुक्त होने से, नम्र होने से, शुद्ध होने से तथा शील पालन से निर्वाण का दर्शन (साक्षात्कार) करा सकता है।

इस प्रकार निर्वाण एक अलभ्य वस्तु होते हुए भी प्रज्ञा, शील एवं समाधि से सम्पन्न साधक के लिए सुलभ है। इस (निर्वाण) से जगत् के कष्टों का निवारण हो सकता है तथा साधक जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। 6 छः वर्ष निरन्तर दुष्करचर्या करने के बाद, जब वे 35 वर्ष की आयु क थे, एक दिन उनके मन में यह भाव जाग्रत, हुआ कि वे सम्बोधि (पूर्णज्ञान) प्राप्त करके रहेंगे। उसी दिन मध्याह में सुजाता नाम की किसी कुलकन्या ने उनको देवता समझ कर मधुर खीर (पायस) खिलायी। सांयकाल एक गलियारे ने उनको सूखी घास की पूलियाँ बिछाने के लिये दीं। इन्हें बोधि प्राप्ति हेतु शुभ लक्षण मानकर वे एक पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष के नीचे सुदृढ पद्यमासन लगाकर बैठ गये और यह निश्चय किया– ''भले ही मेरे शरीर का चर्म,

स्नायुएँ तथा अस्थियाँ गल जायँ, मेरे शरीर का सम्पूर्ण रक्त ही क्यों न सूख जायः परन्तु मैं इस आसन से तब तक न उठूँगा, इसी आसन पर दृढ़ता से बैठा रहूँगा जब तक कि मुझे सम्बोधि (पूर्ण ज्ञान) प्राप्त न हो जाय।''

यह प्रतिज्ञा करने पर, मार ने उनका भयग्रस्त करने के लिये, घोर झञझावत चलाये, प्रभञजन (प्रलयकालीन वायु) छोडेः परन्तु मार के प्रबल अस्त्र बोधिसत्व तक पहुँच ही न सकेः अपितु वे मध्य मार्ग में जन्म का प्रलोभन दिया, परन्तु इस प्रलोभन का भी उनके चित पर कोई प्रभाव न पड़ा। अन्त में मार अपनी पराजय मानकर भाग गया। उसकी सेना भी परास्त होकर पीछे हट गयी।

उसी रात्री में बोधिसत्व गौतम को उस अनुपम अद्वितीय कारण चक्र का बोध हुआ जिस पर इनसे पहले के किसी तत्वचिन्तक ने विचार ही नहीं किया था। इसे जानने के साथ ही वे **बोधिसत्व से 'बुद्ध' बन गये**। विनयपटिक के **महाबग्ग** में लिखा है– ''अब उस जिज्ञासु के लिये सब बातें स्पष्ट हो गयीं। मार ही सेनाओं को भगाकर वह सूर्य के समान लोक में प्रदीप्त हो गया।'' [7]

संदर्भ

1. बुद्धचरितम्– स्वामी द्वारिकादास शास्त्री पृष्ठ सं. ष्ष्. ष्ट
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास– डॉ. उमा शंकर शर्मा ऋषि, पृष्ठ सं. 226–227
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास– डॉ. श्रीकृष्ण ओझा पृष्ठ सं. 74–75
4. भारतीय दर्शन का इतिहास– डॉ. नन्दकिशोर देवराज पृष्ठ सं. 147
5. भारतीय दर्शन के सिद्वान्त– डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, पृष्ठ सं. 122–123
6. बुद्धचरितम् –स्वामी द्वारिकादास शास्त्री पृष्ठ सं. ग्टष्ष्. ग्ग्
7. बुद्धचरितम्–स्वामी द्वारिकादास शास्त्री पृष्ठ सं. ग्ग्टष्